

धर्म और पंथ

प्रथम अर्थात् धर्ममें अन्तर्दर्शन होता है। वह आत्माके अन्दरसे उत्पन्न होता है, वहीं स्थिर रहता है और मनुष्यको उसी ओर आकृष्ट करता है। जब कि दूसरे अर्थात् पंथमें बहिर्दर्शन होता है, वह बाह्य वातावरण तथा देखा-देखीसे उत्पन्न होता है, इसलिए बाहरकी ओर आकृष्ट करता है और मनुष्यको बाहरकी तरफ देखनेमें उलझा रखता है।

धर्म गुणजीवी और गुणावलम्बी है। वह आत्माके गुणोंपर रहता है। पंथ रूपजीवी और रूपावलम्बी है। उसका आधार बाह्य रूप रंग और ऊपरी आङ्ग्वर है। वह वेश, कपड़ोंका रंग, पहननेकी रीति, पास रखनेके साधन तथा उपकरणोंकी ओर विशेष रुचि दिखलाता है तथा उन्हींका आग्रह करता है।

धर्ममें एकता और अभेदके भाव उठते हैं और समानताकी तरंगें उछलती हैं। पंथमें भेद और विषमताकी दरारें पड़ती और बढ़ती जाती हैं। धर्ममें मनुष्य दूसरोंके साथ भेदभाव भूलकर अभेदकी ओर झुकता है, दूसरेके दुःखमें अपना सुख भूल जाता है, या यों कहना चाहिए कि उसके सुख-दुःख कोई अलग वस्तु नहीं रहते। दूसरोंके सुख-दुःख ही उसके सुख-दुःख बन जाते हैं। पंथमें मनुष्य अपनी वास्तविक अभेद-भूमिको भूलकर भेदकी तरफ अधिकाधिक झुकता जाता है। दूसरेका दुःख उसपर असर नहीं करता। अपने सुखके लिए वह लालायित रहता है। अथवा यों कहना चाहिए कि उस मनुष्यके सुख-दुःख दुनियाके सुख-दुःखोंसे सर्वथा अलग हो जाते हैं। इसमें मनुष्यको अपना और पराया ये दो शब्द पद पदपर याद आते हैं। धर्ममें स्वाभाविक नम्रता होनेके कारण मनुष्य अपनेको छोटा और हलका समझता

है। उसमें अमिमान सरीखी कोई बात ही नहीं होती। चाहे जितने गुण तथा सम्पत्ति प्राप्त हो जाय वह अपनेको सबसे छोटा ही देखता है। धर्ममें ब्रह्म अर्थात् सच्चे जीवनकी झाँकी होनेसे, उसकी व्यापकताके सामने मनुष्यको अपना व्यक्तित्व हमेशा छोटा-सा प्रतीत होता है। पंथमें इससे उल्टा है। इसमें गुण और वैभव न होनेपर भी मनुष्य अपनेको दूसरोंसे बड़ा मानता है और दूसरोंसे मनवानेका प्रयत्न करता है। उसमें यदि नम्रता होती है तो वह बनावटी होती है। उस मनुष्यको सदा अपने बड़प्पनका खयाल बना रहता है। उसकी नम्रता बड़प्पनका पोषण करनेके लिए होती है। सच्चे जीवनकी झाँकी न होनेके कारण गुणोंकी अनन्तता तथा अपनी पामरताका भान न होनेके कारण पंथमें पड़ा हुआ मनुष्य अपनी लघुताका अनुभव नहीं कर सकता। वह लघुताका केवल दिखावा करता है।

धर्ममें सत्यकी दृष्टि होती है। उसमें सभी तरफ देखने तथा जाननेका धैर्य होता है। सभी पक्षोंको सह लेनेकी उदारता होती है। पंथमें ऐसा नहीं होता। उसमें सत्याभासकी दृष्टि होती है। वह सम्पूर्ण सत्यको अपने ही पक्षमें मान लेता है, इसलिए दूसरी तरफ देखने तथा जाननेके लिए उसका झुकाव ही नहीं होता। विरोधी पक्षोंको सहने अथवा समझनेकी उदारता उसमें नहीं होती।

धर्ममें अपना दोषोंका और दूसरोंके गुणोंका दर्शन मुख्य होता है। पंथमें इससे उल्टा है। पंथवाला दूसरोंके गुणोंकी अपेक्षा दोष ही अधिक देखता है और अपने दोषोंकी अपेक्षा गुणोंको ही अधिक देखता है। वह अपने ही गुणोंका बखान करता रहता है, उसकी आँखोंमें अपने दोष आते ही नहीं।

धर्ममें केवल चारित्रपर ध्यान दिया जाता है। जाति, लिंग, उमर, वेश, चिह्न, भाषा तथा दूसरी बाह्य वस्तुओंके लिए उसमें स्थान नहीं है। पंथमें इन बाह्य वस्तुओंपर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। अमुक व्यक्ति किस जातिका है? पुष्प है या स्त्री? उमर क्या है? वेश कैसा है? कौन-सी भाषा बोलता है? किस प्रकार उठता बैठता है? पंथमें इन्हींको मुख्य मानकर चारित्रको गौण कर दिया जाता है। बहुत बार ऐसा होता है कि जिस जाति, लिंग, उमर, वेश या चिह्नकी पंथविशेषके अनुयायियोंमें प्रतिष्ठा नहीं है, उन्हें धारण

करके कोई अच्छे चारित्र्यवाला व्यक्ति भी आ जाता है तो वे लोग उसकी तरफ ध्यान नहीं देते। कई बार तो उसे अपमानित करके निकाल तक देते हैं।

धर्ममें सारा संसार एक ही चौंका है। छोटे छोटे चौंके न होनेके कारण उसमें छुआछूत या घृणा-द्वेषकी बात ही नहीं है। यदि कोई बात बुरी समझी जाती है तो यह कि प्रत्येक व्यक्तिको अपना पाप ही बुरा लगता है। पंथमें चौंकेबाजी इतनी जबर्दस्त होती है कि हर एक बातमें छुआछूतकी गंध आती है। इसी कारण पंथवालोंकी नाक अपने आपकी दुर्गन्ध तक नहीं पहुँचती। उन्हें जितनी दुर्गन्ध अपने पंथसे बाहरके लोगोंमें आती है उतनी अपने पापमें नहीं। स्वयं जिसे स्वीकार कर लिया वही उन्हें सुगन्धित लगता है और अपना पकड़ा हुआ रास्ता ही श्रेष्ठ दिखता है। उसके सिवाय सभी बदबूदार तथा सभी मार्ग घटिया मालूम पड़ते हैं।

संक्षेपमें कहा जाय तो धर्म मनुष्यको दिन रात पुष्ट होमेवाले भेदभावके संस्कारोंसे निकाल कर अभेदकी तरफ धकेलता है। पंथ इन संस्कारोंको अधिकाधिक पुष्ट करता है। यदि दैवयोगसे कोई अभेदकी तरफ जाता है तो पंथको सन्ताप होता है। धर्ममें दुनियाके छोटे बड़े झगड़े, जर, जोर, जमीन, छुटपन, बड़पन आदिके सब विरोध शांत हो जाते हैं। पंथमें धर्मके नाम और धर्मकी भावनापर ही झगड़े खड़े हो जाते हैं। इसमें ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि झगड़ेके बिना धर्मकी रक्षा ही नहीं हो सकती।

धर्म और पंथका अन्तर समझनेके लिए पानीका उदाहरण लें, तो पंथ ऐसा पानी है जो समुद्र, नदी, तालाब, कुआँ आदि मर्यादाओंसे भी अधिक संकुचित होकर हिन्दुओंके पीनेके घड़ेमें पड़ा हुआ है। किसी दूसरे व्यक्तिके छूते ही उसमें अपवित्र एवं भ्रष्ट हो जानेका डर है। पर धर्म आकाशसे गिरते हुए वर्षाक पानी सरीखा है। इसके लिए कोई स्थान या व्यक्ति ऊँचा नीचा नहीं है। इसमें एक जगह एक स्वाद और दूसरी जगह दूसरा स्वाद नहीं है। इसमें रूप-रंगका भी भेद नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है और पचा सकता है। पंथ हिन्दुओंके घड़ेके पानी सरीखा होता है। उसके लिए अपने सिवाय दूसरे सब पानी अस्पृश्य होते हैं। उसे अपना स्वाद और अपना ही रूप अच्छा लगता है। प्राणान्त होनेपर भी पन्थ दूसरोंके घड़ेको छूनेसे रोकता है।

पंथ यद्यपि धर्ममेंसे ही उत्पन्न होता है और अपनेको धर्मका प्रचारक मानता है किन्तु हमेशा धर्मका घात ही करता रहता है। जैसे जीवित रुधिर और मांसमेंसे उगा हुआ नख जैसे जैसे बढ़ता जाता है वैसे वैसे रुधिर और मांसको भी नुकसान पहुँचाता है। इस लिए जब बढ़े हुए नखको काट दिया जाता है तभी हाड़-पिंजर सुरक्षित रहते हैं। इसी प्रकार धर्मसे अलग पड़ा हुआ पंथ, चाहे वह धर्ममेंसे ही पैदा हुआ हो, जब काटकर साफ कर दिया जाता है तभी मानव-समाज सुखी होता है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि धर्म और पंथमें किसी प्रकारका मेल है या नहीं, और यदि है तो किस तरहका ? इसका उत्तर सरल है। जीवित नखको कोई नहीं काटता। यदि वह कट जाय तो दुःख होता है। रुधिर और मांसकी रक्षाको भी धक्का पहुँचता है। वे सड़ने लगते हैं। इसी प्रकार पंथोंमें यदि धर्मका जीवन हो तो हजार पंथ भी बुरे नहीं हैं। जितने मनुष्य हैं, चाहे उतने ही पंथ हो जायँ फिर भी लोगोंका कल्याण होगा। क्योंकि इसमें प्रकृतिभेद और दूसरी विशेषताओंके अनुसार हजारों भिन्नताएँ होने पर भी क्लेश नहीं होगा, प्रेम बना रहेगा। अभिमान नहीं होगा, नम्रता बनी रहेगी। शत्रुभाव नहीं होगा, मित्रता कायम रहेगी। उत्तेजितपना नहीं होगा, क्षमाभाव स्थिर रहेगा। पंथ पहले थे, अब हैं और आगे भी रहेंगे। उनमें सुधारने या करने लायक इतना ही है कि उनसे अलग पड़े हुए धर्मके तत्त्वको फिरसे उनमें डाल दिया जाय। हम किसी भी पंथको मानें किन्तु उसमें धर्मके तत्त्वोंको सुरक्षित रखते हुए ही उसका अनुसरण करें। अहिंसाके लिए हिंसा न करें। सत्यके लिए असत्य न बोलें। पंथमें धर्मके प्राण फूँकनेकी शर्त यही है कि हमारी दृष्टि सत्यका आग्रह करने-वाली बन जाय। संक्षेपमें सत्याग्रहीके लक्षण इस प्रकार हैं —

(१) हम स्वयं जिस बातको मानते या करते हों उसकी पूरी समझ होनी चाहिए। अपनी समझपर इतना विश्वास होना चाहिए कि दूसरेको स्पष्टता और दृढ़ताके साथ समझा सकें।

(२) अपनी मान्यताके विषयमें हमारी समझ तथा हमारा विश्वास यथार्थ है, इसकी कसौटी यही है कि दूसरेको समझाते समय हमें तनिक भी आवेश या क्रोध न आवे। दूसरेको समझाते समय अपनी मान्यताकी विशेषताके साथ यदि

कुछ त्रुटियाँ भी मालूम पड़ें तो उन्हें भी बिना संकोच स्वीकार करते जाना चाहिए ।

(३) जिस प्रकार अपनी दृष्टि समझानेका धैर्य चाहिए उसी प्रकार दूसरेकी दृष्टि समझनेके लिए भी पूरी उदारता तथा तत्परता होनी चाहिए । एक वस्तुके विषयमें जितने पक्ष तथा जितने दृष्टिकोण हो सकें सभीकी समानता करके बलाबल जाननेकी वृत्ति होनी चाहिए । इतना ही नहीं यदि अपना पक्ष निर्बल और भ्रान्त मालूम पड़े, तो उसका त्याग करनेमें इतनी प्रसन्नता होनी चाहिए जितनी स्वीकार करते समय भी न हुई थी ।

(४) सम्पूर्ण सत्य देश, काल अथवा संस्कारोंसे सीमित नहीं होता । इसलिए सारे पहलुओंमें जो खंडसत्य हैं, उन सबका समन्वय करनेकी वृत्ति होनी चाहिए ।

पंथमें धर्म नहीं है, इसीलिए पन्थ समाज और राष्ट्रके लिए घातक बने हुए हैं । जहाँ समाज और राष्ट्रकी एकताका प्रश्न आता है वहींपर निष्प्राण पंथ आड़े आ जाते हैं । धर्मजनित पंथोंकी सृष्टि तो मानव-समाज तथा विश्व-मात्रको एक करनेके लिए हुई थी । इस कार्यको करनेका पंथ दावा भी करते हैं । किन्तु हम देख रहे हैं कि पन्थ ही हमारे एक होने और मिलनेमें रोड़ा अटका रहे हैं । पंथका अर्थ और कुछ नहीं उसका अर्थ है, धर्मके नामपर उत्पन्न तथा पुष्ट हुआ हमारे मानसिक संकुचितपनका मिथ्याभिमान । जब लोक-कल्याण या राष्ट्र-कल्याणके लिए एक सामान्य-सी बातको प्रचलित करना होता है तो पंथके जहरीले और संकुचित संस्कार आकर कहते हैं--सावधान ! तुम ऐसा नहीं कर सकते । ऐसा करोगे तो धर्म रसातलमें चला जाएगा । लोग क्या समझेंगे और क्या कहेंगे ! कोई दिगम्बर या श्वेताम्बर या अन्य कोई अपने पक्षकी तरफसे चलनेवाले झगड़ेमें भाग न ले अथवा पैसा होनेपर भी उस झगड़ेके फंडमें दान देनेसे इन्कार करे, न्यायालयमें प्रभाव होनेपर भी साक्षी न बने, तो उसका पंथ उसके लिए क्या करेगा ? मुसलमानोंका सारा जत्था हिन्दू मंदिरके पाससे ताजिया ले जा रहा हो और कोई सच्चा मुसलमान हिन्दुओंकी भावना न दुखानेके उद्देश्यसे दूसरे रास्ते ले जानेको कहे या गोहत्या करनेकी मनाही करे, तो उस मुसलमानके साथ उसके पंथवाले कैसा

व्यवहार करेंगे ? एक आर्य समाजका सभ्य कभी सच्ची दृष्टिसे मूर्तिके सामने बैठ जाय तो उसका समाज-पंथ उसके लिए क्या करेगा ? इस प्रकार पंथ सत्य और एकताके आड़े आ रहे हैं । अथवा यों कहना चाहिए कि हम स्वयं पंथमय संस्कारके शस्त्रसे सत्य और एकताके साथ द्रोह कर रहे हैं । इसीलिए पंथका अभिमान करनेवाले तथा बड़े बड़े माने जानेवाले धर्मगुरु, पंडित या पुरोहित कभी आपसमें नहीं मिल सकते । वे कभी एकरस नहीं हो सकते, जब कि साधारण मनुष्य आसानीसे मिल-जुल सकते हैं । आप देखेंगे कि एकता और लोक-कल्याणका दावा करनेवाले पंथके गुरु ही एक दूसरेसे अलग अलग रहते हैं । यदि धर्मगुरु एक हो जायें अर्थात् एक दूसरेका आदर करने लगें, साथ मिलकर काम करें और झगड़े पैदा ही न होने दें, तो समझना चाहिए कि अब पंथमें धर्म आ गया है ।

हमारा कर्तव्य है कि पंथोंमें धर्मको लावें । यदि ऐसा न हो सके तो पंथोंको मिटा दें । धर्मशून्य पंथकी अपेक्षा विना पंथका मनुष्य या पशु होना भी लोकहितकी दृष्टिसे अधिक अच्छा है । इसमें किसीको विवाद नहीं हो सकता ।

[पर्युषण-व्याख्यानमाला, अहमदाबाद, १९३० । अनु० इन्द्रचन्द्र, एम० ए०]